



**ROSA  
LUXEMBURG  
STIFTUNG  
SOUTH ASIA**

---

# चिमड़ी भर आसमान

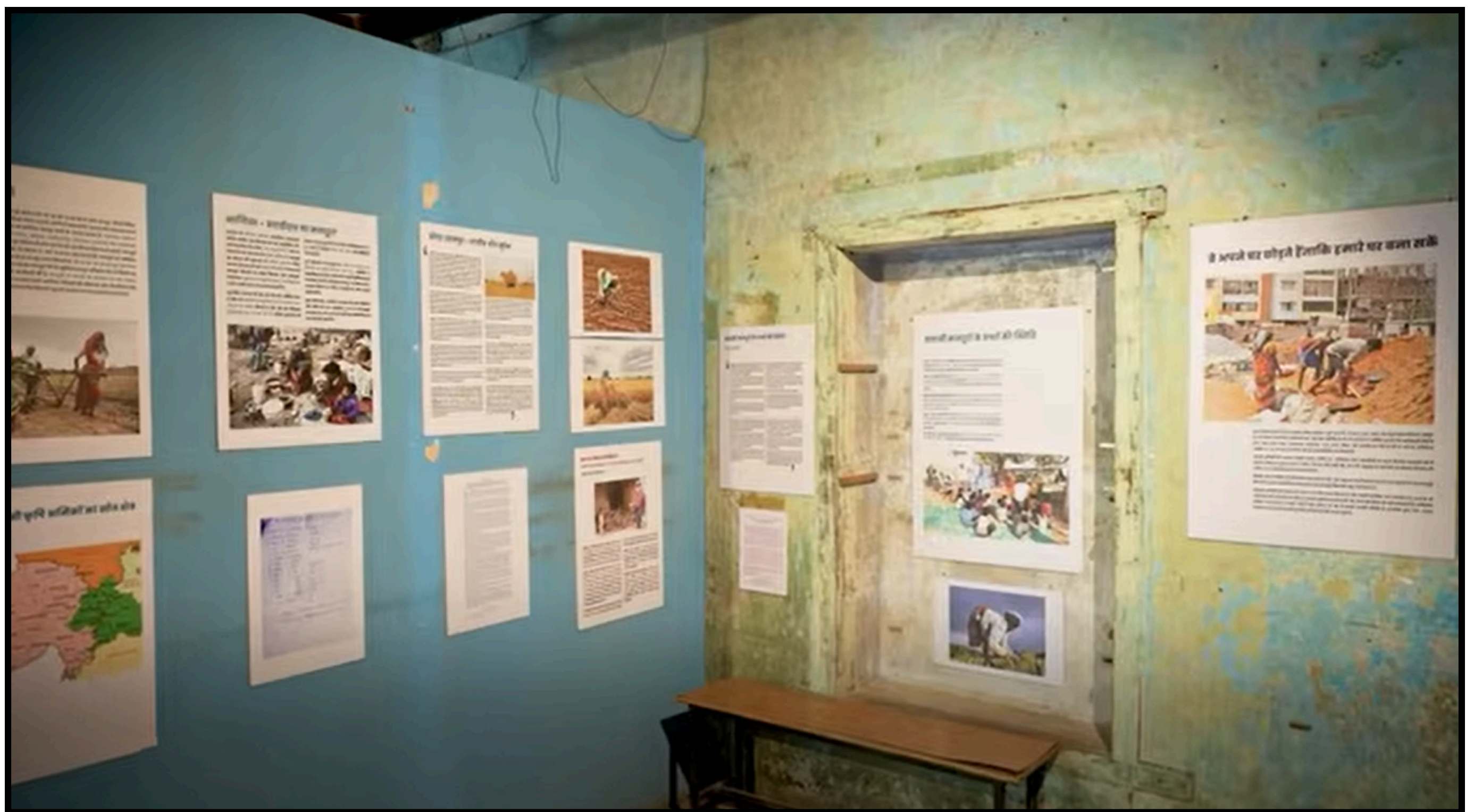
लाखों आदिवासी मजदूरों  
के प्रवासी जीवन की  
झलकियाँ तीन-दिवसीय  
प्रदर्शनी की कार्यवाही

---



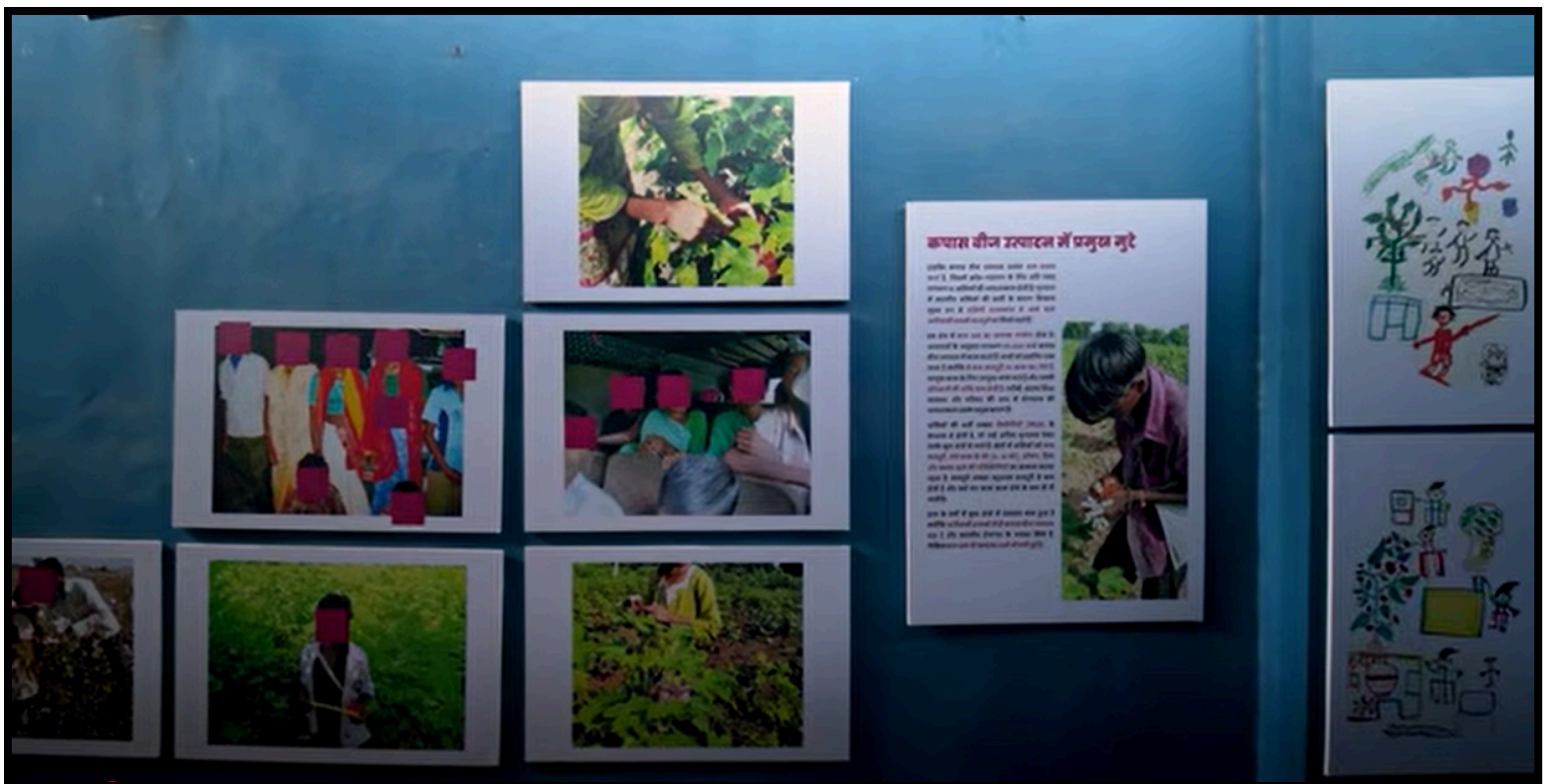
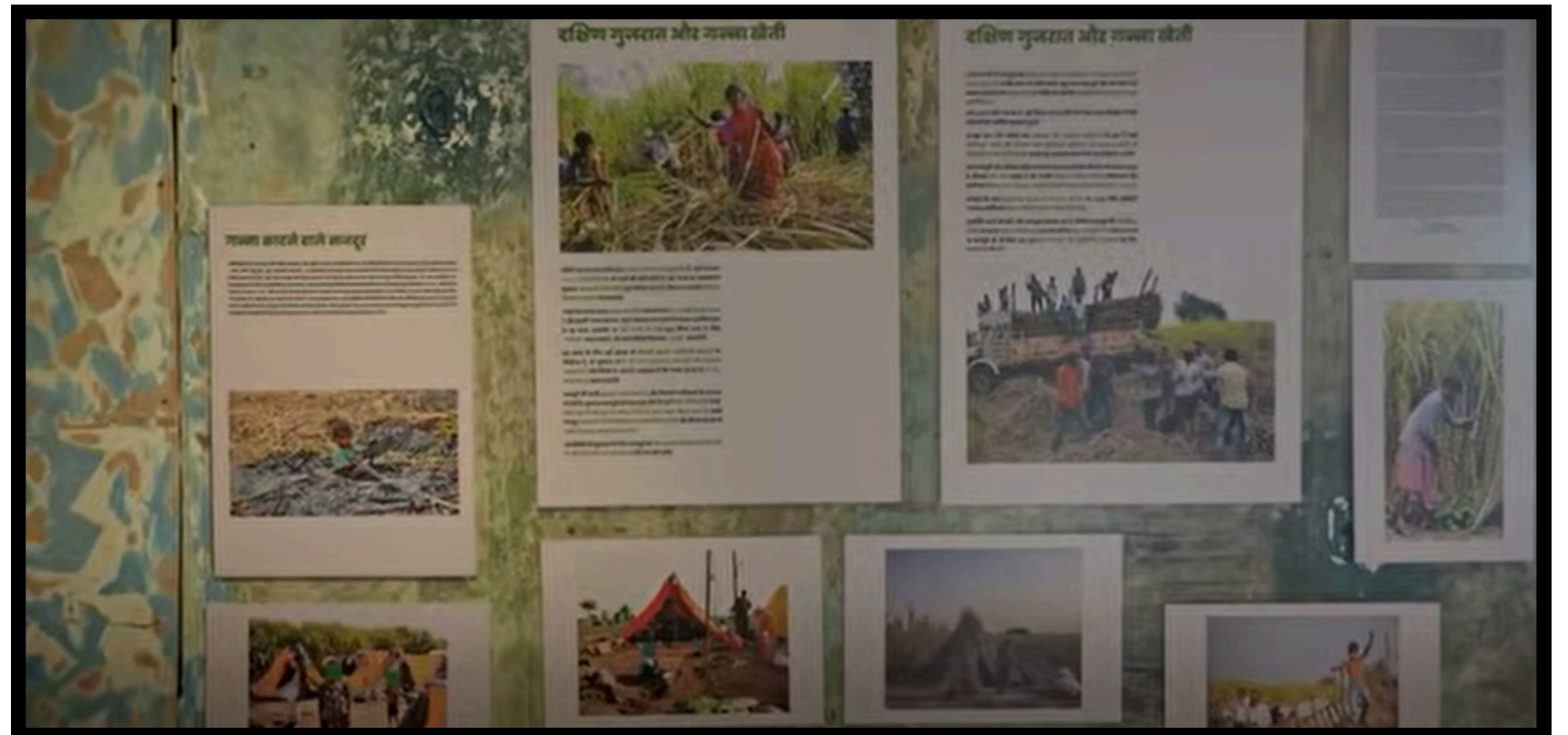
19, 20 और 21 मार्च 2026 को, सेंटर फॉर लेबर रिसर्च एंड एक्शन और रोजा लक्ज़मबर्ग स्टिफ्टिंग ने पश्चिम भारत के आदिवासी प्रवासी मजदूरों की काम और जीवन स्थितियों पर एक तीन-दिवसीय प्रदर्शनी आयोजित की। इस प्रदर्शनी का उद्देश्य आदिवासी क्षेत्रों से आने वाले मजदूरों की प्रवास यात्राओं को उजागर करना था, जो गुजरात, राजस्थान, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और दादरा और नगर हवेली से आते हैं। गुजरात में निर्माण और कृषि क्षेत्र के अधिकांश मजदूर मौसमी आदिवासी प्रवासी हैं।

आदिवासी मजदूर श्रम श्रृंखला के सबसे निचले स्तर पर होते हैं—वे सबसे कठिन काम करते हैं, सबसे कम मजदूरी पाते हैं, और बहुत खराब तथा कई बार जोखिम भरी परिस्थितियों में काम करते हैं। असंगठित क्षेत्र में काम करने के कारण उन्हें श्रम कानूनों का लाभ नहीं मिलता, और बंधुआ मजदूरी तथा बाल श्रम आज भी मौजूद हैं। किराए का घर न ले पाने के कारण, बड़ी संख्या में मजदूर अहमदाबाद और सूरत जैसे शहरों में खुले में या अस्थिर झुगियों में रहते हैं।



ये मजदूर मुख्य रूप से निर्माण कार्य, खेती, गन्ना कटाई और ईंट भट्टों में काम करते हैं। काम के स्थान पर उन्हें शोषण और भेदभाव का सामना करना पड़ता है, कई बार यह बंधुआ मजदूरी के रूप में भी होता है। महिला मजदूरों को और अधिक भेदभाव झेलना पड़ता है—उन्हें कम मजदूरी मिलती है और उन्हें घर और काम दोनों जगह बिना भुगतान का देखभाल कार्य करना पड़ता है। इस प्रदर्शनी का उद्देश्य इन मुद्दों को उजागर करना और आदिवासी मजदूरों को एक मंच प्रदान करना था।

प्रदर्शनी का उद्देश्य इस वास्तविकता को दिखाना था। इसमें प्रदर्शनों के माध्यम से इस क्षेत्र से प्रवास के इतिहास और समय के साथ उसके पैटर्न में आए बदलावों को दिखाया गया। कला, ध्वनि, पाठ, फिल्म, प्रदर्शन और संवाद के माध्यम से, प्रदर्शनी ने लोगों को आमंत्रित किया कि वे प्रवास के पीछे श्रम, बिछुड़ने का दर्द और जीवन निर्माण की निरंतर प्रक्रिया को देखें, सुनें और महसूस करें। प्रदर्शनों का मुख्य उद्देश्य प्रवास की वास्तविकता, शोषण की व्यवस्था, श्रम की गरिमा, और सामूहिक संघर्ष और एकजुटता के क्षणों को दिखाना था।



# पहला दिन

कार्यक्रम की शुरुआत 'चिमड़ीभर आसमान' नाम की एक छोटी फिल्म से हुई, जिसे **वैभव जाधव** ने बनाया था। सीएलआरए के संस्थापक **सुधीर कटियार** ने फिल्म के महत्व को समझाया। फिल्म में गन्ना मजदूरों के एक परिवार के संघर्ष को दिखाया गया, जिन्हें गन्ने की बची हुई भूसी या 'चिमड़ी' को उचित दाम पर बेचने से रोका गया, जबकि यह उनके लिए अतिरिक्त आय का एक साधन था। प्रदर्शनी का नाम इसी फिल्म से लिया गया।

**रोजा लकज़मबर्ग स्टिफ्टिंग दिल्ली की प्रमुख ब्रिटा पीटरसन** ने ऐसे आयोजनों के महत्व पर बात की, खासकर उस समय में जब मजदूरों के अधिकार, विशेषकर आदिवासी लोगों के अधिकार, लगातार छीने जा रहे हैं।



**कॉन्फ्लिक्टोरियम की निदेशक वाईएसके प्रेरणा** ने बताया कि इस स्थान को इस तरह डिजाइन किया गया है कि अलग-अलग पृष्ठभूमि के लोग एक साथ आ सकें और चर्चा के माध्यम से परिवर्तनकारी ज्ञान का निर्माण हो सके।

**प्रदर्शनी के क्यूरेटर मृत्युंजय मुखर्जी** ने कहा कि देश के पश्चिमी क्षेत्र के आदिवासियों की कहानियाँ बहुत कम जानी और चर्चा की जाती हैं, इसलिए उन्हें सामने लाना जरूरी है।



**सीएलआरए के शांति लाल मीणा और अनामिका सिंह** ने प्रदर्शनी के महत्व को समझाया। उन्होंने 'भील देश' शब्द की प्रासंगिकता बताई, जो 1896 में गढ़ा गया था और जिसमें मध्य प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र और राजस्थान शामिल हैं। उन्होंने बताया कि जिन आदिवासी मजदूरों के पास गांवों में आजीविका के साधन नहीं हैं, उनके लिए प्रवास जरूरी है। शोध के अनुसार, इन क्षेत्रों के लगभग दो-तिहाई आदिवासी प्रवास कर रहे हैं, और सीएलआरए के अनुमान के अनुसार लगभग 1 करोड़ मजदूर (बच्चों सहित) इन क्षेत्रों से बाहर जा रहे हैं।

## पैनल चर्चा

पहली पैनल चर्चा शांति लाल मीणा द्वारा संचालित की गई, जिसमें विभिन्न राजनीतिक संगठनों के प्रतिनिधि शामिल थे। चर्चा का केंद्र यह था कि आदिवासी प्रवास की वास्तविकता को राजनीतिक विमर्श में कैसे शामिल किया जाए, जहां यह अभी लगभग अनुपस्थित है।

**दलित कार्यकर्ता गोवाभाई राठौड़** ने कहा कि आदिवासी मजदूर शहरों में आकर अपनी संस्कृति और जीवन पीछे छोड़ देते हैं और वहां की राजनीति में भी भाग नहीं ले पाते। इस तरह वे अपने मूल स्थान और गंतव्य दोनों जगहों पर अलग-थलग पड़ जाते हैं। उन्होंने कहा कि उन्हें एकजुट करने की कोई साझा रणनीति नहीं है, और सबसे पहले मजदूरों को अपनी ताकत का एहसास कराना जरूरी है। उन्हें केवल जाति के आधार पर नहीं बल्कि श्रम के आधार पर एकजुट करना चाहिए।



**सुनील सिंघाड़िया**, जो एक प्रमुख आदिवासी पार्टी नेता हैं, ने आदिवासी मजदूरों के लिए राजनीतिक प्रतिनिधित्व बनाने के महत्व पर बात की। उन्होंने कहा कि आदिवासी मजदूरों के मुद्दे अक्सर सामने ही नहीं आते, इसलिए उनका प्रतिनिधित्व बहुत जरूरी है। भील आदिवासी पार्टी (BAP) में नेता जनता द्वारा चुना जाता है, और वर्तमान में विधान सभा में जो नेता पार्टी का प्रतिनिधित्व कर रहा है, वह वास्तव में लोगों का सच्चा प्रतिनिधि है। पार्टी का मानना है कि ऐसे नेताओं के बजाय जिन्हें लोग पहचानते भी नहीं हैं, लोगों को एक स्वतंत्र और अपने द्वारा चुनी गई आवाज मिलनी चाहिए जो उनकी बात रख सके। फिलहाल, उन्होंने कहा कि पार्टी एक ऐसी नीति बनाने पर विचार कर रही है जिससे बाहर प्रवास करने वाले मजदूरों का पंजीकरण हो सके, ताकि उनके प्रवास का रिकॉर्ड रखा जा सके।



इसके बाद जागृत आदिवासी दलित संगठन की **माधुरी कृष्णास्वामी** ने आदिवासी इतिहास पर ध्यान देने की जरूरत के बारे में बात की। उन्होंने कहा कि पहले आदिवासी स्वतंत्र थे, फिर वे किसान बने, और धीरे-धीरे उन्होंने अपनी जमीन भी खो दी। आज स्थिति यह है कि वे अपने शरीर पर भी पूरा अधिकार नहीं रखते। इस तरह, स्वतंत्रता का सवाल भविष्य का नहीं, बल्कि अतीत की अधूरी स्वतंत्रताओं का है। उन्होंने कहा कि आदिवासी समाज हमेशा सामूहिक रूप से काम करता आया है, इसलिए एक ही व्यक्ति द्वारा सभी का प्रतिनिधित्व करने और निर्णय लेने की व्यवस्था पर सवाल उठाया जा सकता है। हालांकि, चुना हुआ प्रतिनिधि जरूरी है, लेकिन उसके साथ मजदूरों की संगठनात्मक भागीदारी और सक्रिय सहभागिता भी उतनी ही जरूरी है। उन्होंने विकास की अवधारणा पर भी सवाल उठाया—क्या विकास का मतलब केवल एक व्यक्ति की आर्थिक प्रगति है, या उसमें पूरे समुदाय की भलाई भी शामिल होनी चाहिए? आदिवासी संस्कृति सामूहिक विकास को महत्व देती है। उन्होंने यह भी पूछा कि क्या समाज में हमारे पास केवल दो ही विकल्प हैं—“साहेब” बनना या “मजदूर” रहना? और क्या हम अपने बच्चों को अनजाने में शोषक बनने की ओर तो नहीं धकेल रहे हैं?

इसके बाद महाराष्ट्र के आदिवासी नेता **लखनभाई पवार** ने कहा कि आजादी के बाद भारतीय सरकार ने आदिवासियों के बारे में और भी कम सोचना शुरू कर दिया। लगातार प्रवास के कारण आदिवासी अपने मूल क्षेत्रों में जमीन और जगह दोनों खो रहे हैं, जिससे वे और अधिक वंचित हो रहे हैं। वे अपने आरक्षण के अधिकार से भी वंचित हो रहे हैं। उन्होंने कहा कि इसी कारण चुनाव और प्रवास एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं।

उदाहरण के तौर पर, जब भी मूल राज्यों में चुनाव होते हैं, वे ऐसे समय पर आयोजित किए जाते हैं जब मजदूर प्रवास पर होते हैं, ताकि वे मतदान न कर सकें। उन्होंने कहा कि शक्तिशाली लोगों को जमीन चाहिए, और उसे पाने का सबसे आसान तरीका यह है कि आदिवासी मजदूरों को लगातार प्रवास के लिए मजबूर रखा जाए।

इसके बाद **कदम सिंह गणावा**, जो आदिवासी परिवार मजदूर संगठन (भागिया मजदूर) के गुजरात राज्य अध्यक्ष हैं, ने अपने हाल के संगठनात्मक प्रयासों के अनुभव साझा किए। स्वयं एक बटाईदार (शेयरक्रॉपर) होने के कारण उन्होंने बताया कि उन्होंने अपने जीवन में कभी वोट नहीं डाला और न ही कभी मतदान केंद्र देखा है। वे दो साल से गुजरात में हैं, लेकिन मजदूरों की समस्याएं अब भी वैसी ही हैं। उन्होंने अपने साथियों के बारे में बताया कि उन्हें बटाई में उनका उचित हिस्सा नहीं मिलता। शिक्षा और सशक्तिकरण की कमी के कारण वे अपने अधिकारों के लिए लड़ भी नहीं पाते। उन्होंने याद किया कि जब वे पहली बार विरोध प्रदर्शन में शामिल हुए, तो वहां पहुंचते ही उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और पूछताछ की गई। इस तरह उनकी आवाज को लगातार दबाया और मिटाया जाता है।



आंदोलन को आगे बढ़ाने की अपनी योजना के बारे में उन्होंने कहा कि सबसे पहले वे मजदूरों का उनके मूल राज्यों में दस्तावेजीकरण करेंगे, उनके प्रवास का प्रमाण तैयार करेंगे और उनकी जमीन के स्वामित्व का रिकॉर्ड बनाएंगे।

पैनल चर्चा के बाद आगे भी बातचीत जारी रही, जिसमें आदिवासी समुदाय की शिक्षा को बेहतर बनाने के लिए अधिक स्कूल खोलने की जरूरत पर जोर दिया गया। प्रतिभागियों ने कहा कि भले ही हमारे पास कई आंदोलन हैं, लेकिन सही मुद्दों को उठाना बहुत जरूरी है। एक प्रतिभागी ने यह भी कहा कि आदिवासी केवल आरक्षित सीटों से ही चुने जा रहे हैं, जिससे आरक्षण के महत्व को समझा जा सकता है, साथ ही इस नीति की आलोचनाओं पर भी सवाल उठता है।

इसके बाद छोटा उदयपुर के एक आदिवासी समूह ने **चाडा/टिमली नृत्य** प्रस्तुत किया, जिसमें शहनाई (flute) और ढोल जैसे वाद्ययंत्रों का उपयोग हुआ और दर्शकों को भी इसमें शामिल किया गया।



# दूसरा दिन

यद्यपि प्रदर्शनी सुबह 11 बजे से चल रही थी, वक्ताओं के सत्र दिन में बाद में शुरू हुए। दिन के पहले सत्र में गणेश डेवी, बाबूभाई निनामा और अशोक चौधरी के साथ एक पैनल चर्चा हुई, जिसका संचालन प्रीति ओझा ने किया।

पहले वक्ता **गणेश एन. डेवी** थे, जो एक विचारक, सांस्कृतिक कार्यकर्ता और संस्थान निर्माता हैं, और “पीपल्स लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया” तथा उनके द्वारा स्थापित “आदिवासी अकादमी” के लिए जाने जाते हैं। उन्होंने एमएसयू बड़ौदा विश्वविद्यालय में पढ़ाने के अपने अनुभव के बारे में बताया, जहां उन्हें लगा कि यूरोप और अन्य देशों की भाषाओं पर अधिक ध्यान दिया जाता है, जबकि स्थानीय भाषाओं को नजरअंदाज किया जाता है। इस अनुभव ने उन्हें अपने देश की भाषा और संस्कृति पर ध्यान केंद्रित करने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने और उनकी पत्नी ने शहर में उन स्थानों (नाकों) पर आने वाले मजदूरों को देखा, जहां वे रोज इकट्ठा होते थे। दो वर्षों तक उन्होंने वहां आने वाले हर मजदूर का नाम नोट किया और पाया कि उनके उपनाम एक जैसे थे। धीरे-धीरे उन्होंने उनके मूल स्थान और शहर में आने के कारणों को समझा।



उन्होंने भारत के वन कानून (Forest Act) पर भी बात की और कहा कि “आदिवासी” शब्द केवल उन्हीं राज्यों में इस्तेमाल होता है जो उपनिवेशित रहे हैं। उनका कहना था कि ब्रिटिश शासन का मुख्य उद्देश्य भूमि पर नियंत्रण करना था, और आदिवासी समुदाय अक्सर सत्ता को स्वीकार नहीं करते थे। इसलिए उनकी भूमि पर कब्जा करने के लिए कानून बनाए गए और “आदिवासी” जैसी श्रेणियां बनाई गईं। उन्होंने कहा कि हमें केवल पारिस्थितिकी (ecology) की साधारण समझ से आगे बढ़कर “इकोक्रेसी” की ओर जाना चाहिए, जहां लोग अपनी पर्यावरणीय स्थितियों में हो रहे बदलावों पर अधिक अधिकार रखते हों।

इसके बाद **आदिवासी एकता परिषद के संयोजक अशोक चौधरी** ने कहा कि कृषि वह पहला माध्यम था जिसने महिलाओं, जमीन और जानवरों पर नियंत्रण स्थापित किया। इससे पहले समाज में इस तरह की भूमि या संपत्ति की स्पष्ट सीमाएं नहीं थीं। आज कृषि मजदूरों के शोषण से जो अतिरिक्त उत्पादन होता है, वही उद्योगों को आगे बढ़ाने में इस्तेमाल होता है। उन्होंने संयुक्त राष्ट्र के रियो सम्मेलन का जिक्र किया, जहां यह माना गया था कि आदिवासी जीवन शैली जलवायु परिवर्तन की समस्याओं का समाधान दे सकती है। लेकिन उन्होंने सवाल उठाया कि जो लोग खुद शोषण के शिकार हैं, वे बदलाव कैसे ला सकते हैं। उन्होंने मजदूरों के अधिकारों को मजबूत करने और उनकी जमीन और स्थान के अधिकार का सम्मान करने की जरूरत पर जोर दिया। उन्होंने यह भी कहा कि शिक्षा प्रणाली का निजीकरण हो चुका है और यह छात्रों को उसी औद्योगिक पूंजीवादी व्यवस्था का हिस्सा बनाने की ओर ले जाती है।



**बाबूभाई निनामा**, जो दाहोद के एक प्राथमिक स्कूल शिक्षक और कार्यकर्ता हैं, ने बताया कि शुरुआत में उन्हें अपनी आदिवासी पहचान के बारे में ज्यादा जानकारी नहीं थी और वे उस पर गर्व भी नहीं करते थे। लेकिन बाद में उन्होंने खुद को शिक्षित किया और अपनी समझ विकसित की। उन्होंने कहा कि आदिवासी सबसे अधिक शोषित समुदाय हैं। उन्होंने यह भी कहा कि आदिवासी सरकार के खिलाफ नहीं हैं, लेकिन वे यह सवाल उठाते हैं कि जब भारत अंतरराष्ट्रीय समझौतों (जैसे संयुक्त राष्ट्र के प्रावधान) का हस्ताक्षरकर्ता है, तो वह उन्हें लागू क्यों नहीं करता। आज आदिवासियों की जमीन छीनी जा रही है और उनकी संस्कृति मिटाई जा रही है। उनके रीति-रिवाजों का “संस्कृतिकरण” (Sanskritization) हो रहा है—जैसे पहले गांव का सरपंच विवाह करवाता था, लेकिन अब ब्राह्मणवादी रीति-रिवाजों से विवाह हो रहा है। उन्होंने यह भी कहा कि अमीर वर्ग को डर है कि अगर आदिवासी शिक्षित और सशक्त हो गए, तो फिर उनके लिए काम कौन करेगा।

दर्शकों में से एक वक्ता ने कहा कि यह पूरी स्थिति एक विचारधारा के दूसरी विचारधारा पर हावी होने का उदाहरण है। उन्होंने कहा कि हमें इन मुद्दों को ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखना चाहिए, क्योंकि यह आदिवासियों के लगातार हाशिए पर जाने की प्रक्रिया है—पहले ब्रिटिश शासन के कारण और अब अन्य संस्थाओं के कारण। अगर हम केवल वर्तमान समस्याओं पर ध्यान देंगे और इतिहास को नजरअंदाज करेंगे, तो हम समाधान नहीं निकाल पाएंगे।



दिन का अंत अहमदाबाद की बस्तियों के निवासियों द्वारा प्रस्तुत एक नुक्कड़ नाटक से हुआ, जिसका निर्देशन **अश्विनभाई वाघेला** ने किया। इस नाटक में विभिन्न स्थितियों के माध्यम से आदिवासी प्रवासी मजदूरों की चुनौतियों को दिखाया गया। इसमें यह विरोधाभास सामने आया कि जो मजदूर हमारे लिए भोजन उगाते हैं, वे खुद भूखे सोते हैं, और जो हमारे घर बनाते हैं, उनके पास खुद रहने के लिए घर नहीं है।

इसके बाद **भवेशभाई खाट** के संगीत समूह ने प्रस्तुति दी, जिसमें सामाजिक मुद्दों जैसे मजदूर संगठन और आरक्षण पर गीत प्रस्तुत किए गए।



# तीसरा दिन

तीसरे दिन का सत्र साहित्य और आदिवासी संस्कृति के संगम पर केंद्रित था। इस सत्र में आदिवासी कवियों और कलाकारों ने कविता, कहानी और प्रदर्शन के माध्यम से प्रवास, स्मृति, पहचान और प्रतिरोध के अपने अनुभव साझा किए। यह सत्र कनुभाई वसावा द्वारा संचालित किया गया और इसमें पायलबेन राठवा, बरखा वालवी और आनंदभाई वसावा शामिल थे। वंदना टेटे भी ऑनलाइन इस सत्र में शामिल हुईं।

**कनुभाई वसावा**, जो गुजरात विद्यापीठ में एसोसिएट प्रोफेसर हैं, ने कहा कि कविता और साहित्य अपने आप में लक्ष्य नहीं हैं, बल्कि वे उन कहानियों को सामने लाने का माध्यम हैं जिन्हें लंबे समय से अनदेखा किया गया है। उन्होंने कहा कि जहां राजनीति खत्म होती है, वहीं से कविता की शुरुआत होती है।



**पायलबेन राठवा**, जो एक वारली कलाकार और कार्यकर्ता हैं, ने कहा कि उन्होंने हमेशा देखा है कि महिलाएं हर प्रकार के श्रम में प्रमुख भूमिका निभाती हैं, चाहे वह घर का काम हो या बाहर का। आदिवासी गीत और कविताएं भी अक्सर महिलाएं ही गाती हैं। उन्होंने दो वारली पेंटिंग्स दिखाईं, जिनमें से एक में निर्माण स्थल पर काम करती महिलाएं थीं, जिनमें कुछ गर्भवती भी थीं। इसके माध्यम से उन्होंने यह दिखाया कि गर्भवती महिलाएं भी भारी शारीरिक श्रम करने के लिए मजबूर हैं। उन्होंने आदिवासी महिलाओं के खिलाफ हिंसा और बलात्कार की घटनाओं का भी उल्लेख किया और इस मुद्दे पर तुरंत ध्यान देने की आवश्यकता पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि उनकी कला उनके लिए रोजगार और प्रतिरोध दोनों का साधन है।



**बरखा वालवी**, जो एक लेखिका और कवयित्री हैं, ने आदिवासी महिला मजदूरों के जीवन और संघर्ष पर एक कविता प्रस्तुत की।

**आनंद वसावा**, जो गुजरात विश्वविद्यालय में एसोसिएट प्रोफेसर हैं और 'आदिलोक' पत्रिका के संपादक हैं, ने कहा कि आदिवासी इतिहास पर पर्याप्त लेखन नहीं हुआ है। उन्होंने बताया कि गांधीनगर में स्थित विधानसभा भवन आदिवासी मजदूरों द्वारा बनाया गया है। उन्होंने कहा कि आदिवासी संस्कृति को संरक्षित करने के लिए हमें उनके बारे में लगातार लिखना चाहिए। उन्होंने यह भी कहा कि आदिवासी संस्कृति प्रकृति के साथ सामंजस्य में रहने की शिक्षा देती है, और वे समाज से अलग होकर ऊंचाइयों पर पहुंचने के बजाय जमीन से जुड़े रहना चाहते हैं। उन्होंने भी एक कविता प्रस्तुत की।

**वंदना टेटे**, जो खड़िया और हिंदी की कवयित्री हैं, ने कहा कि हम खुद अपनी कहानियों पर ध्यान नहीं देते। आदिवासी प्रवासी मजदूरों का इतिहास साहित्य में लगभग अनुपस्थित है। उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया कि हमें स्कूलों में जो आदिवासी दृष्टिकोण सिखाया जाता है और वास्तविकता के बीच के अंतर को समझना चाहिए।

**अश्विनभाई वाघेला**, जो मजदूर अधिकार मंच से जुड़े हैं, ने भी एक कविता प्रस्तुत की, जिसमें उन्होंने मजदूरों के प्रतिरोध और अपनी आवाज उठाने की आवश्यकता पर जोर दिया।



ऊपर दी गई छवि  
पर क्लिक करके  
प्रदर्शनी का एक  
छोटा वीडियो  
देखें।

प्रस्तुतकर्ता  
मालिका

डिज़ाइन  
नेहा

